RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-04
Issue-03
March -2019

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com [UGC Listed Journal]

महात्मा गाँधी का राजनीतिक दर्शन

डॉ0 अनुज कुमार सिंह

इतिहास विभाग, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)

गाँधी के दर्शन और राजनीतिक कार्यक्रम का जनता में आकर्षण क्यों व्यापक रहा, इसे समझने के लिए पहले विश्वयुद्ध के दौरान भारत के राजनीतिक और सामाजिक वातावरण को समझना होगा, क्योंकि भारतीय राष्ट्रवाद के एक निर्विवाद नेता के रूप में गांधी के उदय के लिए इस वातावरण ने निश्चित ही एक अनुकूल संदर्भ पैदा किया। युद्ध का सबसे तात्कालिक परिणाम रक्षा–व्यय में एक अभूवपूर्व वृद्धि था, जो 1919 के बाद भी, कटौती तो दूर, लगातार बढ़ता रहा। नतीजा था एक विशाल राष्ट्रीय ऋण जिसमें 1914 और 1923 के बीच 30 लाख रूपए से अधिक की बढ़ोतरी हुई। इसका मतलब था भारी युद्धजनित कर्ज और करों में वृद्धि और चूँकि मालगुजारी तय की जा चुकी थी और फौरन नहीं बढ़ाई जा सकती थी, इसलिए व्यापार और उद्योग पर अप्रत्यक्ष करों का बोझ बढ़ा। सीमा शुल्क बढ़ा। एक आयकर लगा, कंपनियों पर और अविभाजित हिंदू परिवारों पर भारी कर लगे, अतिरिक्त लाभकर लगा, आदि। इन नए करों का बोझ आखिरकार आम जनता पर ही पड़ा, क्योंकि इनके कारण भारी मूल्यवृद्धि हुई। सरकारी गणनाओं के अनुसार (1873 को आधार वर्ष मानने पर) आखिल भारतीय स्तर पर मूल्य सूचकांक 1914 में 147 से बढ़कर 1920 में 281 हो गया। यह अभूतपूर्व मूल्यवृद्धि अंशतः अप्रत्यक्ष करों का और अंशतः यातायात संबंधी या अन्य आर्थिक अव्यवस्थाओं का नतीजा थी। 1918–19 ओर 1920–21 में दो–दो बार फसलों की अभूतपूर्व हानिक के कारण खाद्यान्न का उत्पाद कम रहा और इससे संयुक्त प्रांत, पंजाब, बंबई, मध्य प्रांत, बिहार और उड़ीसा के काफी बड़े हिस्से प्रभावित हुए। लेकिन जहाँ घरेलू उपयोग के लिए पहले से ही अनाजों की भारी कमी थी, वहीं बाहर लड़ रही फौजों के लिए अनाजों का निर्यात जारी रहा। इससे अनेक क्षेत्रों में लगभग अकाल जैसी दशाएँ पैदा हो गई और इंफ्लुएंजा की महामारी ने जनता की बदहाली को और बढ़ा दिया। 1921 की जनगणना के अनुसार 1918–19 के अकाल और महामारी के कारण कोई 1 करोड़ 20 लाख से 1 करोड़ 30 लाख लोग मरे, जिससे देश की स्वाभाविक जनसंख्या वृद्धि रूक गई।

फौज के लिए जबरी भरती 1914 और 1923 के बीच बेरोकटोक जारी रही, जिससे देहातों में जन–असंतोष लगातार बढ़ता रहा। यह इसलिए और भी बढ़ता रहा कि युद्ध के आर्थिक प्रभावों की मार ग्रामीण समाज के सभी वर्ग पहले से झेल रहे थे। जहाँ औद्योगिक व आयातित वस्तुओं के और अनाजों के दाम बढ़ रहे थे और गरीब किसानों को प्रभावित कर रहे थे, वहीं भारतीय कृषि से निर्यातित कच्चे मालों के दाम उसी गति से नहीं बढ़े। नतीजा हुआ कि नकदी फसलों के निर्यात गिरे, उनके भंडार में वृद्धि हुई और उनके क्षेत्रफल में गिरावट आई, जिससे 1917–19 के दौरान बाजार में एक संकट पैदा हो गया। इससे धनी किसानों पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। इस काल में बे–जमीन होनेवाले और बेदखली खेतिहर बनते जानेवाले किसानों की संख्या में स्पष्ट वृद्धि हुई, और जमीनें गैर–खेतिहर वर्गों के हाथों में पहुँचती रहीं। 1914 और 1922 के बीच संयुक्त प्रांत और मद्रास में यह प्रक्रिया तीव्र रही और अधिक स्पष्ट रूप से देखी जाती रही। कुछ क्षेत्रों में किसानों की बढ़ती आर्थिक परेशानी संगठित किसान प्रतिरोधों में व्यक्त हुई, मसलन संयुक्त प्रांत में 1918 में आरंभ हुए किसान सभा आंदोलन में।

उद्यागों का प्रसार पहले विश्वयुद्ध के दौर का दूसरा महत्त्वपूर्ण आर्थिक विकासक्रम था। वित्तीय आवश्यकताओं, आर्थिक मजबूरियों और राष्ट्रवादी दबाव के कारण उद्योगीकरण के प्रति सरकार की नीति बदली और जूट व कपड़ा उद्योगों का उल्लेखनीय विकास हुआ। जहाँ जूट उद्योग का विकास मुख्यतः ब्रिटिश पूँजी से हुआ वहीं बंबई और अहमदाबाद के कपड़ा उद्योगों में मुख्यतः भारतीय पूँजी लगी हुई थी। यहाँ के बड़े उद्योगपति अंग्रेजों के वफादार बने रहे, क्योंकि वे निर्यातों पर और कच्चे कपास की कीमतें कम रखवाने या श्रमिक असंतोष से निबटने के मामले से सरकार की सहायता पर निर्भर थे। इसके विपरीत युद्धकालीन करों के खिलाफ था रूपए और स्टर्लिंग की घटती–बढ़ती विनियम दरों को लेकर छोटे और मझोले व्यापारियों की अनेक शिकायतें थीं। जनगणना के आँकड़ों के अनुसार 1911 और 1921 के बीच संगठित उद्योगों में मजदूरों की संख्या में 5.75 लाख की वृद्धि हुई तथा इस काल की अभूवर्पूव मूल्यवृद्धि ने इस प्रसारमान मजदूर वर्ग पर सचमुच गहरी चोट की। युद्ध के दौरान और बाद में व्यापारियों ने भारी मुनाफे कमाए, मगर मजदूरों की वास्तविक मजदूरियाँ गिरीं। लाहौर या बंबई जैसे नगरों में मजदूरों के जीवनयापन की औसत लागत में 60 या 70 प्रतिशत की वृद्धि हुई जबकि, मजदूरियाँ केवल 15 से 25 प्रतिशत तक बढ़ी'' ऐसी ही हालत कलकत्ता के जूट मिलों में, जमशेदपुर के इस्पात संयंत्र में और असम के चाय बागानों में थी। इसका स्पष्ट परिणाम चेम्सफोर्ड के शब्दों में ''हड़तालों

RRIJM 2015, All Rights Reserved

का एक तरह का तपता बुखार था'', जिसने भारत के सभी औद्योगिक केंद्रों को प्रभावित किया।

इस तरह भारतीय जनता के लगभग सभी वर्गों के लिए पहले विश्वयुद्ध ने सामाजिक और आर्थिक अफरातफरी पैदा की और जनाक्रोश के एक आसन्न उभार के लिए आवश्यक सामाजिक लामबंदी की दशा पैदा की। युद्ध ने पश्चिम की तड़क–भड़क से प्रभावित शिक्षित नवयुवकों का मोहभंग भी किया और एकाएक उनको पश्चिमी सभ्यता का घिनौना चेहरा नजर आने लगा। इस तरह नैतिक और राजनीतिक हताशा के एक वातावरण ने तब गांधी का स्वागत किया जब वे दक्षिण अफ्रीका में अंग्रेजों से सफल टकराव की एक पृष्ठभूम के साथ भारत आए। जैसा कि ज्यूडिथ ब्राउन का तर्क है, गांधी की नई राजनीतिक विचारधारा ने ''कुछ को पूरी तरह लेकिन बहुतों को अंशतः'' आकर्षित किया, क्योंकि हरेक को इसमें ऐसी कोई बात नजर आई जिससे वह स्वयं को जोड़ सके। पहले के राजनीतिज्ञों के विपरीत वे भारत की बहुलता के बारे में पूरी तरह सजग थे और उन्होंने ध्यान रखा कि कोई भी समुदाय या वर्ग विमुख न हो। पहले के राजनीतिज्ञ पश्चिम से लिए गए विचारों पर निर्मित एक राष्ट्रवादी विचारधारा का वर्चस्व चाहते थे, जबकि गांधी का तर्क था कि इस विचारधारा की जड़ें भारत और उसकी प्राचीन संस्कृति में होनी चाहिए। उनकी राय में जनता की वफादारियाँ वर्ग से निर्धारित नहीं होती थी, बल्कि जनमासन पर धर्म का प्रभाव कहीं अधिक था। इसलिए उन्होंनं जनता की लामबंदी के लिए धार्मिक मुहावरों का सफलतापूर्वक उपयोग किया। लेकिन यह पिछले राजनीतिज्ञों वाला पुनरूत्थानवाद नहीं था, क्योंकि वे (गांधी) इतिहास की नहीं, धार्मिक नैतिकता की बात कर रहे थे। उनका लक्ष्य एक नैतिक लक्ष्य और इसलिए एक हवाई लक्ष्य था– अप्राप्य और हमेशा दूर–दूर रहनेवाला। उन्होंने स्वराज को अपना राजनीतिक लक्ष्य बतलाया, पर कभी उसका भाव स्पष्ट नहीं किया और इसलिए अपने छतरी समान नेतृत्व में उन्होंने विभिन्न समुदायों को एकजुट किया। ''सर्व–समावेश'' को ''गांधी की अनोखी राजनीतिक शैली'' समझा जाने लगा, जो भारत में विविधताओं की स्वीकृति पर आधारित थी।

गांधीजी ने अपने राजनीतिक विचार विभिन्न स्त्रोतों से लिये। उन्होंने हेनरी डेविड थोरो, जॉन रस्किन, राल्फ वॉल्डो इमर्सन और लेव तालस्ताय को पढ़कर उनसे प्रेरणा ली। वैष्णव धर्म और जैन धर्म से वे उनसे अधिक नहीं तो उतने ही प्रभावित थे, क्योंकि गुजरात में जीवन के आरंभिक दिनों में ही वे इन विचारों से परिचित हो चुके थे। गांधी का दर्शन पहले के राष्ट्रवादी नेताओं के दर्शन से सार्थक सीमा तक इस अर्थ में भिन्न था कि उन्होंने ''आधुनिक'' सभ्यता की जमकर आलोचना की–और बाद के टीकाकारों ने इस आलोचना पर मिश्रित प्रतिक्रियाएँ व्यक्त कीं। आशीष नंदी की राय में वे ''पश्चिम के एक प्रति–आधुनिक आलोचक'' थे, जैसे कि उनसे पहले रवींद्रनाथ ठाकुर थे और वे समझते थे कि अपनी असामान्य शक्ति और प्रसार के कारण पश्चिम रोगग्रस्त हो चुका है; गांधी ने यह तर्क देकर ''शासक संस्कृति की आंतरिक वैधता के लिए खतरा पैदा कर दिया।'' पार्थ चटर्जी की राय में उनका दर्शन ''नागरिक समाज की एक समालोचना'' था या और भी सीधे–सीधे कहें तो ''पूँजीवादी समाज के पूरे ढाँचे की एक बुनियादी समालाचना'' था। मैनफ्रेड स्टेगर (2000) ने इसे ''उदारवाद की समालोचना'' कहा है, जबकि भिक्खु पारिख की राय में वह ''आधुनिक सभ्यता की समालोचना'' था, जिसने साम्राज्यवाद से टकराव के लिए एक विचारधारा प्रदान करके ''उसकी कुछ महान उपलब्धियों और शक्तियों को अनदेखा भी किया।'' गांधी की संकलित रचनाएँ आज सौ से अधिक खंडों में प्रकाशत हैं और विभिन्न प्रश्नों पर उनके विचार लगातार विकासमान रहे। इसलिए उनके दर्शन पर कोई प्रामाणिक वक्तव्य दे सकना कठिन है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. डी.जी. तेंदुलकर, 'महात्मा', खंड 6, पृ. 3573।
2. प्यारे लाल, 'महात्मा गांधी द अर्लियर फेज', पृ. 224।
3. मोहनदास करमचंद गांधी, 'आटोबायोग्राफी', पृ. 98।
4. के. पोलक, विश्व भारती क्वाटरली, गांधी स्मृति, शांति विशेषांक, पृ. 118।
5. डी.जी. तेंदुलकर, उपर्युक्त, खंड 2, पृ. 361
6. लुई फिशर, 'गांधी', पृ. 165।
7. मोहनदास करमचंद गांधी, 'हिन्द स्वराज', पृ. 6।

RRIJM 2015, All Rights Reserved